निबन्ध

जैन दर्शन में अनेकान्त

जैन दर्शन के भव्य प्रासाद के चार मुख्य स्तम्भ हैं, उन्हीं के आधार पर यह महल टिका हुआ है—(१) आचार में अहिंसा, (२) विचारों में अनेकान्त, (३) वाणी में स्याद्वाद और (४) समाज में अपरिग्रह। यदि इन चारों में से एक की भी कमी हो जाती है तो जैन दर्शन का प्रासाद डगमगाने लगता है। हमें इन चारों की रक्षा करनी चाहिए। आज के युग में जैन दर्शन के अनुयायियों में इसकी कमी देखी जाती है और यह कमी ही जैन धर्म के ह्रास का कारण है। बुद्धिजीवी जैन दार्शनिकों, अणुव्रती-महाव्रतियों तथा धर्मश्रद्धालु श्रावकों का ध्यान इस ओर जाना चाहिए कि हम अनेकान्ती हैं वस्तु-स्वरूप के ज्ञाता हैं फिर क्यों परस्पर वैमनस्य भाव रखकर झगड़ते हैं।

भगवान महावीर ने वस्तु को अनेक धर्मात्मक बतलाया है उस अनेक धर्मात्मक वस्तु को जानने के लिए अनेकान्त दृष्टि या नयदृष्टि का प्रयोग बतलाया है क्योंकि अनेक धर्मात्मक वस्तु का परिज्ञान अनेक दृष्टियों अर्थात् विभिन्न पहलुओं से ही हो सकता है। एक से नहीं। 'अन्त' शब्द का अर्थ धर्म होता है जिसमें अनेक धर्म पाये जायें वह अनेकान्त है। इस अनेकान्त विचारधारा को स्याद्वाद की निर्दोष भाषा से अभिव्यक्त किया जाता है। जब यह अनेकान्तवाद स्याद्वाद की गंगा में बहता है तब किनारे के मिथ्यावादों का स्वतः निरसन हो जाता है। यह वाद अपनी अलौकिक नाना नयों की तरंगों से तरंगित होता हुआ अनन्त धर्मात्मक वस्तु का सुस्पष्ट प्रतिपादन करता है जिससे समग्र विरोध उपशान्त हो जाते हैं। इस विरोध मथन करने वाले अनेकान्त को आचार्य अमृतचन्द्र ने नमस्कार किया है—

परमागमस्य बीजं
निषिद्ध जात्यन्ध सिन्दूर विधानम्।
सकल नय विलसितानां
विरोधमथनं नमामि अनेकान्तम्॥

अर्थात् जन्मान्ध पुरुषों के हस्ति विधान का निषेधक समस्त नयों से विलसित वस्तु स्वभाव के विरोध का शामक उत्तम जैन शासन का बीज अनेकान्त सिद्धान्त को मैं (आचार्य अमृतचन्द्र) नमस्कार करता हूँ।

इसी प्रकार सन्मति तर्क के कर्ता न्यायावतार के लेखक आचार्य श्री सिद्धसेन दिवाकर ने भी अनेकान्त को नमस्कार किया है—

जेण विणा लोगस्स ववहारो सव्वथा न निव्वइए।
तस्स भुवणेक्क गुरुणो णमोऽणेगंतवायस्स॥
—सन्मति तर्क ३/६८

अर्थात् जिसके बिना लोक का व्यवहार सर्वथा नहीं चल सकता उस तीन भुवन के एकमात्र गुरु अनेकान्तवाद को मैं नमस्कार करता हूँ।

इससे सिद्ध होता है कि यह अनेकान्तवाद समस्त विरोधों को शान्त करने वाला, लोक व्यव-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हार को सुचारु रूप से चलाने वाला और वस्तु-स्वरूप का सच्चा परिचायक है। इसके जाने बिना पग-पग पर विसंवाद खड़े होते हैं। न केवल अन्य-वादियों के विरुद्ध ही अपितु अपने स्वयं के वादों में ही विवाद उपस्थित हो जाते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भगवान् महावीर के अनुयायियों में भी जो फिरकापरस्ती, लड़ाई-झगड़े, खींचतान देखने को मिलती है वह इस अनेकान्तवाद को न समझने के कारण ही है।

यह अनेकान्त अपेक्षावाद के नाम से भी प्रख्यात है। मुख्य और गौण विवक्षा या अपेक्षा ही इसका आधार है। वस्तु के एक-अनेक, अस्ति-नास्ति, नित्य-अनित्य, तत्-अतत्, सत्-असत् आदि धर्म अपेक्षा से ही कहे जा सकते हैं। वक्ता की इच्छा के अनुसार कहे जाते हैं। ज्ञानी को उसके अभिप्राय को जानकर ही वस्तु को समझने में उपयोग लगाना चाहिए। बिना अपेक्षा के वस्तु का सही स्वरूप नहीं कहा जा सकता है और न समझा जा सकता है। आचार्य श्री उमास्वाति ने 'अर्पितानर्पित सिद्धेः'—अर्थात् वक्ता जब एक धर्म का प्रतिपादन करता है तो दूसरा धर्म गौण कर देता है और जब दूसरे धर्म को कहता है तब अन्य धर्म को गौण कर देता है। यही वस्तु के कथन का क्रम है और यही समझने का। पंचाध्यायी कर्ता ने लिखा है—

स्यादस्ति च नास्तीति च नित्यमनित्यं
त्वनेकमेकं च।
तदतच्चेतिचतुष्टययुग्मैरिव गुम्फितं वस्तु ॥

अर्थात् स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, स्यात् नित्य, स्यात् अनित्य, स्यात् एक, स्यात् अनेक, स्यात् सत्, स्यात् असत् इस प्रकार चार युगलों की भाँति वस्तु अनेक धर्मात्मक है।

इस प्रकार अनेकान्तवाद अपेक्षावाद कथञ्चिद्-वाद और स्याद्वाद ये सब एकार्थवाची हैं। स्यात् का अर्थ कथञ्चित् अर्थात् किसी अपेक्षा से है। स्यात् शब्द व्याकरण के अनुसार अव्यय है, जिसका अर्थ भी अनेकान्त का द्योतक अथवा एकान्त दृष्टि का निषेधक है। इसी की पुष्टि में आचार्य विद्यानन्दी ने कहा है—

"स्यादिति शब्दोऽनेकान्तद्योति प्रतिपत्तव्यो" अर्थात् स्यात् शब्द को अनेकान्त का द्योतक समझना चाहिये। स्वामी अकलंक देव ने भी स्याद्वाद का पर्याय अनेकान्त को ही बताया है और बतलाया है कि यह अनेकान्त सत् असत्, नित्यानित्यादि सर्वथा एकान्त का प्रतिक्षेप लक्षण है। "सदसन्नित्यादि सर्वथैकान्तप्रतिक्षेपलक्षणोऽनेकान्तः" अर्थात् सर्वथा एकान्त का विरोध करने वाला अनेकान्त कथञ्चित् अर्थ में स्यात् शब्द निपात है—

"सर्वथात्वनिषेधकोऽनेकान्तता द्योतकः कथञ्चिदर्थे स्याच्छब्दो निपातः"। समंतभद्र ने भी स्याद्वाद का लक्षण अपने देवागमस्तोत्र में कितना सुन्दर किया है—

स्याद्वादः सर्वथैकान्तत्यागात् किं वृत्तचिद्विधि।
सप्तभंगनयापेक्षो हेयादेयविशेषकः ॥

कहने का तात्पर्य है कि सभी जैनाचार्यों ने अनेकान्त एवं स्याद्वाद को सर्वथा एकान्तवाद का खण्डन करने वाला, विधि निषेध को बताने वाला, हेयोपादेय को समझाने वाला कहा है। जब तक हम इस अनेकान्त को व्यावहारिक नहीं करेंगे और मात्र शास्त्रों की वस्तु ही रखेंगे तब तक कल्याण नहीं हो सकता। जैसे आम की अपेक्षा आंवला छोटा होता है किन्तु बेर की अपेक्षा बड़ा होता है। उसी प्रकार मनुष्यत्व की अपेक्षा राजा और रंक समान होते हैं, पण्डित और मूर्ख समान होते हैं किन्तु फिर भी उनमें परस्पर कितना अन्तर होता है। इसे कोई इनकार नहीं कर सकता। पिता-पुत्रादि के नाते भी अपेक्षाकृत कहे जाते हैं। इस प्रकार यह अनेकान्त अथवा अपेक्षावाद शास्त्रों में ही नहीं, व्यवहार-परक भी सिद्ध होता है। द्रव्यदृष्टि वस्तु के ध्रौव्य रूप का द्योतन कराती है तो पर्यायदृष्टि उसकी उत्पत्ति व विनाश का ज्ञान कराती है। कोई भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वस्तु मूल रूप से सर्वथा नष्ट नहीं होती, उसकी पर्याय ही नष्ट होती है। जैसे कोई स्वर्णाभूषण है, चाहे उसे कितनी ही बार गलाकर बदल लें, बदल जायेगा। आज वह कुण्डल है तो कालान्तर में उसका कटक बनाया जा सकेगा फिर कभी अन्य आभूषण बन जायेगा परन्तु वह अपने स्वर्णपन से च्युत नहीं होगा इसी भाँति वस्तु में परिवर्तन पर्यायापेक्षा से होता है। द्रव्य अपेक्षा से नहीं। आज जो गेहूँ है वही आटा बन जाता है। फिर वही रोटी भोजन, मल, खाद आदि नाना पर्यायों को धारण करता है। इतना होने पर भी कोई विरोध नहीं आता। उसी प्रकार अनेकान्त के सहारे वस्तु को समझने में कोई विरोध नहीं आता। आज कोई धनादि के होने से धनाढ्य है तो कल वही उसके अभाव में रंक गिना जाता है। आज कोई रोग से रोगी है तो कल वह निरोगी कहलाता है। जोवन और मरण का क्रम भी इसी प्रकार हानोपादान के माध्यम से चलता रहता है। स्याद्वादी अनेकान्त-वादी कभी भी दुखी या मायूस नहीं होता। वह वस्तु का परिणमनशीलपना भलीभाँति जानता है। परिणमन के अभाव में वस्तुत्व धर्म समाप्त हो जाता है। जो व्यक्ति इसको नहीं जानता वह दुःखी होता है। संयोग और वियोग का सही स्वरूप जिसे ज्ञात नहीं है वह अज्ञानी इष्ट वस्तु के संयोग में हर्ष और वियोग में दुःखी होता है। ज्ञाता इससे विपरीत माध्यस्थ भाव धारण करता है। इसी विषय पर स्वामी समन्तभद्र ने लिखा है—

घटमौलिसुवर्णार्थी नाशोत्पादस्थितिष्वयम्।
शोक, प्रमोद माध्यस्थं जनोयाति सहेतुकम्॥

अर्थात् जैसे सोने के कलश को गलाकर मुकुट बनाया गया तो कलशार्थी को दुःख होगा। मुकुट के इच्छुक को प्रसन्नता होगी किन्तु जो मात्र स्वर्ण ही चाहता है उसे न हर्ष होगा न विषाद। वह मध्यस्थ रहेगा। इसी प्रकार लोक में विभिन्न वाद अपनी-अपनी मान्यता को लेकर उपस्थित होते हैं। कोई शून्यवादी है तो कोई सदैश्वरवादी। कोई द्वैत-वादी है तो कोई अद्वैत को मानते हैं। कोई नित्य-वादी है तो कोई सर्वथा अनित्यवादी है, क्षणिक वादी है। अनेकान्त का ज्ञाता कभी इनसे विवाद नहीं करता। वह अपने अनेकान्त से वस्तु के असली स्वरूप को समझकर नय-विवक्षा लगाता है और सभी को स्वीकार करता है कि वस्तु कथञ्चित् नित्य भी है और अनित्य भी है, एक भी है अनेक भी है। द्वैत भी है और अद्वैत भी है। वह सब दशाओं में 'भी' से काम लेता है 'ही' से नहीं। वह कभी नहीं कहेगा कि वस्तु नित्य ही है, अनित्य ही है, एक ही है, अनेक ही है, अतः स्पष्ट ही है कि अनेकान्तदर्शन समस्त वादों को मिलाकर वस्तु तत्व को निखारता है। अनेकान्ती जानता है कि वस्तु सामान्य विशेषात्मक है। न केवल सामान्य है तो न केवल विशेष। न सर्वथा भाव स्वरूप है तो न सर्वथा अभाव रूप। स्वामी समन्तभद्र ने इसी तथ्य को युक्त्यनुशासन में कहा है—

व्यतीत सामान्य विशेषवाद्विश्वाखिलापार्थ
विकल्पशून्यम्।
खपुष्पवत्स्यादसदेव तत्वं प्रबुद्ध तत्वाद्भवतः
परेषाम्॥

अर्थात् एकान्तवादियों का तत्व सामान्य और विशेष भावों से परस्पर निरपेक्ष होने के कारण 'ख' पुष्पवत् असत् है क्योंकि वह भेद व्यवस्था से शून्य है। तत्व न सर्वथा सत् स्वरूप ही प्रतीत होता है और न असत्स्वरूप ही, परस्पर निरपेक्ष सत् असत् प्रतीति कोटि में नहीं आता किन्तु विवक्षावशात् अनेक धर्मों से मिश्रित हुआ तत्व ही प्रतीति योग्य होता है।

कुछ कहते हैं कि जो वस्तु अस्ति रूप है वह नास्ति रूप कैसे हो सकती है? इसी के साथ उभय रूप, अनुभय रूप, वक्तव्य अव्यक्तव्य कैसे हो सकती है? इसका उत्तर इस प्रकार दिया जा सकता है कि—उक्त सातों भंग विधि प्रतिषेध रूप प्रश्न होने पर सही स्थिति में सिद्ध होते हैं। कहा भी है—

साध्वीरत्न कुसुमवती अभिनन्दन ग्रन्थ
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"प्रश्नवशादेकत्र वस्तूनि अविरोधेन विधि प्रतिषेध कल्पना सप्तभंगी।"

(१) स्यादस्ति, (२) स्याद्नास्ति, (३) स्यादस्तिनास्ति, (४) स्याद् अवक्तव्य, (५) स्यादस्ति अवक्तव्य, (६) स्यान्नास्ति अवक्तव्य, (७) स्यादस्तिनास्तिअवक्तव्य। ये सातों भंग विधि प्रतिषेध कल्पना के द्वारा विरोध रहित वस्तु में एकत्र रहते है और प्रश्न करने पर जाने जाते हैं। वस्तु स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव की अपेक्षा अस्तिरूप है तो परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभाव की अपेक्षा नास्तिरूप है। उक्त सात भंगों में 'स्यात्' शब्द जागरूक प्रहरी बना हुआ है जो एक धर्म से दूसरे धर्म को मिलने नहीं देता, वह विवक्षित सभी धर्मों के अधिकारों की पूर्ण सुरक्षा करता है। इस स्यात् का अर्थ शायद या सम्भावना नहीं है। वक्ता के अभिप्राय के अनुसार एक धर्म प्रमुख होता है तब दूसरा गौण हो जाता है। इसमें संशय और मिथ्याज्ञानों की कल्पना भी नहीं है। अन्य मतावलम्बियों ने भी अनेकान्तवाद को स्वीकार किया है। अध्यात्म उपनिषद में भी कहा है—

भिन्नापेक्षायथैकत्र, पितृपुत्रादि कल्पना।
नित्यानित्याद्यनेकान्त, स्तथैव न विरोत्स्यते॥

वैशेषिक दर्शन में कहा है—सच्चासत्। यच्चान्यदसदस्तदसत्।

इस प्रकार अन्य दर्शनों में भी अनेकान्त की सिद्धि मिलती है। हमको अनेकान्तदृष्टि द्वारा ही वस्तु को ग्रहण करना चाहिए। एकान्तदृष्टि वस्तु तत्व का ज्ञान कराने में असमर्थ है। अनेकान्त कल्याणकारी है, और यही सर्व धर्म समभाव में कारणरूप सिद्ध हो सकता है।

(शेष्ठ पृष्ठ ४९७ का)

है, उसका सही मूल्यांकन करना बहुत ही कठिन है सामाजिक कदर्थनाओं के यन्त्र में पिसी जाकर भी इक्षु की तरह वह सदा मधुर माधुर्य लुटाती रही है।

नारियो! युग की पुकार है। तुम्हें जागना है। वासना के दलदल से तुम्हें मुक्त होना है। तुम्हारा गौरव इसमें नहीं कि विज्ञापनों में तुम्हारे अर्धनग्न देह को प्रस्तुत किया जाय। जो नारी माता-भगिनी-पुत्री जैसे गरिमामय पद पर प्रतिष्ठित रही, जो सत्य और शील की साक्षात्मूर्ति रही, उनको चन्द चांदी के टुकड़ों के लोभ में फँसे हुए इन्सान जिस रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं, वह हमारी संस्कृति के साथ धोखा है। भारतीय संस्कृति में नारी नारायणी के रूप में प्रतिष्ठित रही है। 卐

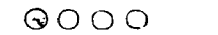

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org